LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 3: कर्मयोग

1/4 (श्लोक 1-11), शनिवार, 13 सितंबर 2025

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/rgV90v50S0U

यज्ञार्थ कर्म का अर्थ

देशभक्ति गीत, सुमधुर प्रार्थना, हनुमान चालीसा दीप प्रज्वलन, गुरु वन्दना के साथ आज के विवेचन सत्र का आरम्भ हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता के पहले अध्याय में हमने अर्जुन की मन:स्थिति के बारे में देखा।

कई प्रयास किए गए कि युद्ध न हो जब सारे ही प्रयास विफल हो गए तो उसके पश्चात् दोनों सेनाएँ आमने-सामने आकर खड़ी हो गईं। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि युद्ध टालना असम्भव हो गया। दोनों पक्षों के वीरों ने शङ्खनाद किया। स्वयं अर्जुन ने भी शङ्खनाद किया। उसके पश्चात् परिजनों के प्रति मोह उत्पन्न होने के कारण और मन में अत्यधिक करुणा आने से "मैं युद्ध नहीं करूँगा।" ऐसा कह कर अर्जुन रथ के पीछे जाकर बैठ गए। ऐसे अर्जुन को पहले तो श्रीभगवान् ने डाँटा, दूसरे अध्याय में इसका वर्णन आता है।

अध्यायों का क्रम कुछ चिन्तन पूर्वक बदला गया है।
श्रीभगवान् कहते हैं-
मन की दुर्बलता छोड़ो अर्जुन, नपुसङ्कता छोड़ो अर्जुन!

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।।2.3।।

तुम्हारे मन में यह दुर्बल विचार आना उचित नहीं है। युद्ध के लिए खड़े हो जाओ। जब अर्जुन को यह ध्यान में आया कि मैं जो कर रहा हूँ, वह गलत है। मैं समझ कुछ नहीं पा रहा हूँ। उन्होंने विचार किया कि सही क्या है? यह मुझे यह जानना चाहिए। तब अर्जुन श्रीभगवान् की शरण में आए।

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।2.7।।

मैं आपकी शरण में आया हूँ आप मुझे उपदेश दीजिए। ऐसा अर्जुन के कहने के पश्चात् श्रीभगवान् ने अर्जुन को बताया। मूल

ज्ञान या सिद्धान्त क्या है? दूसरे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक से ज्ञान का महत्त्व बताया। साथ ही साथ कर्त्तव्य कर्म का क्या महत्व है, यह भी स्पष्ट किया। ज्ञान का महत्त्व और कर्त्तव्य कर्म का महत्त्व दोनों बातें जब श्रीभगवान् ने एक साथ बताईं तो अर्जुन को लगा कि श्रीभगवान् को मुझे कोई एक निश्चित बात बतानी चाहिए।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।2.52।।

श्रीभगवान् ने अर्जुन से कहा कि जब तुम्हारी बुद्धि इस मोह के दलदल से निकलेगी तब तुम्हें शान्ति और वैराग्य की प्राप्ति होगी।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।2.51।।

श्रीभगवान् की यह बात सुनकर अर्जुन को लगा ज्ञान और बुद्धि का अधिक महत्त्व है। स्थितप्रज्ञ के लक्षण भी श्रीभगवान् ने अर्जुन को बताए। ये सारी बातें सुनने के पश्चात् अर्जुन के मन में यह विचार आने लगे कि यदि ज्ञान और बुद्धि का इतना महत्त्व है तो फिर श्रीभगवान् मुझे युद्ध जैसे कर्म में क्यों प्रवृत्त कर रहे हैं?

3.1

अर्जुन उवाच
ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते, मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं(ङ्) कर्मणि घोरे मां(न्), नियोजयसि केशव॥3.1॥

अर्जुन बोले - हे जनार्दन! अगर आप कर्म से बुद्धि (ज्ञान) को श्रेष्ठ मानते हैं, तो फिर हे केशव! मुझे घोर कर्म में क्यों लगाते हैं ?

3.2

व्यामिश्रेणेव वाक्येन, बुद्धिं(म्) मोहयसीव मे।
तदेकं(वँ) वद निश्चित्य, येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥3.2॥

(आप अपने) मिले हुए से वचनों से मेरी बुद्धि को मोहित-सी हो रही है। (अतः आप) निश्चय करके उस एक बात को कहिये, जिससे मैं कल्याण को प्राप्त हो जाऊँ।

विवेचन- अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण के सखा भी हैं। मामा, बुआ के बेटे भाई भी हैं। यहाँ पर अर्जुन ने श्रीभगवान् का शिष्यत्व प्राप्त किया है और सखा होने के कारण यह एक अच्छी बात हो गई कि वे श्रीभगवान् से निःसङ्कोच होकर अपने प्रश्न पूछ रहे हैं। अर्जुन ने जो प्रश्न पूछे हैं, उनके कारण श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश देने के लिए मानो श्रीभगवान् बाध्य हो गए।

अर्जुन श्रीभगवान् से पूछते हैं,
हे जनार्दन! यदि कर्म से, बुद्धि, ज्ञान श्रेष्ठ हैं ऐसा आपका मत है। हे केशव! तो फिर मुझे युद्ध जैसे घोर कर्म करने के लिए क्यों नियुक्त कर रहे हो? क्यों बता रहे हो? आप मिश्रित भाषा बोल रहे हो। दो बातें कर रहे हो। कभी कर्म की बात करते हो और कभी ज्ञान की श्रेष्ठता बताते हो। साँख्य ज्ञान का महत्त्व बताते हो। आत्मतत्त्व के बारे में विवेचन करते हो।

आत्मा की अमरता के बारे में श्रीभगवान् ने दूसरे अध्याय में बताया है। आत्मज्ञान प्राप्त करना श्रेष्ठ है, ऐसा आप बताते हो आपको लगता है, आपका मत है, फिर आप मुझे युद्ध करने के लिए भी प्रवृत करते हो। यह दो बातें नहीं हुई क्या? मिश्रित भाषा नहीं हुई क्या?

इव-
अर्थात् उसके जैसी, मिश्रित भाषा जैसी। ऐसी भाषा से आप मेरी बुद्धि को और ज्यादा मोहित, भ्रमित कर रहे हो। पहले ही मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा है, क्या सही है और क्या गलत? तो निश्चित एक बात बताओ। ज्ञान श्रेष्ठ है अथवा बुद्धि श्रेष्ठ है, या कि कर्त्तव्य कर्म श्रेष्ठ है? यह इसलिए बताओ कि जिसके द्वारा मेरा कल्याण होगा। श्रीभगवान् से यदि हमें जीवन में कुछ माँगना है तो क्या माँगना और कैसे माँगना? यह अर्जुन से हमें सीखना चाहिए। कल्पना करिए यदि साक्षात् श्रीभगवान् हमारे सामने प्रकट हो गए और पूछें कि वत्स तुम्हें क्या वरदान चाहिए? माँगो, तो हम क्या माँगेंगे?

अर्जुन दूसरे अध्याय में भी यही बात माँगते हैं और यहाँ पर भी यही कह रहे हैं कि जिसमें मेरा कल्याण हो, वह बात मुझे बताइए। मैं नहीं जानता मेरे लिए क्या श्रेय है, मेरे लिए क्या कल्याणकारी है? वह बात बताइए जिसमें मेरा कल्याण हो। दोहरी भाषा मत बोलिए ऐसी एक बात बताओ जिससे मेरा कल्याण हो। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

देवा तुवांचि ऐसें बोलावें।
तरी आम्हीं नेणतीं काय करावें।
आता संपले म्हणे पां आघवें।
विवेकाचे॥6॥

आप ही ऐसी भाषा बोलेंगे तो हमारे जैसे अज्ञानी क्या करेंगे?

कोई अन्धा व्यक्ति आपसे मार्ग पूछ रहा है तो आप यह कहें कि दाएँ ओर से जाइए फिर बाएँ ओर से जाइए तो वह कहेगा भाई मुझे दिखता नहीं है एक रास्ता बताओ कि मैं कहाँ से जाऊँ ठीक उसी प्रकार अर्जुन श्रीभगवान् से पूछ रहे हैं कि आप मुझे एक बात बताओ कर्म महत्त्वपूर्ण है या ज्ञान।

मी आधींचि कांहीं नेणें। वरी कवळिलों मोहें येणें।
श्रीकृष्णा विवेकु या कारणें। पुसिला तुज ॥

पहले ही मेरी समझ में नहीं आ रहा कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं। "मोह और करुणा के कारण मैं त्रस्त हो गया हूँ इसीलिए मैंने आपसे पूछा।"

तंव तुझी एकेक नवाई। एथ उपदेशामाजीं गोवाई।
तरी अनुसरलिया काई । ऐसें कीजे ? ।। ११।।

आपकी बात तो मुझे गड़बड़ प्रतीत होती है, आप कहते हैं यह भी अच्छा है वह भी अच्छा है कोई एक बात बताइए।

3.3

श्रीभगवानुवाच
लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा, पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां(ङ्), कर्मयोगेन योगिनाम्॥3.3॥

श्रीभगवान् बोले - हे निष्पाप अर्जुन! इस मनुष्यलोक में दो प्रकार से होने वाली निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गयी है। (उनमें) ज्ञानियों की (निष्ठा) ज्ञानयोग से और योगियों की (निष्ठा) कर्मयोग से (होती है)।

विवेचन- श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं-
लोकेस्मिन्
अर्थात् इस धरती पर, इस लोक में मैंने क्या-क्या बताया है। दो प्रकार की निष्ठा, दो प्रकार के मार्ग, मैंने पहले भी बताए हैं और

बताता आ रहा हूँ। एक है प्रवृत्ति मार्ग और दूसरा है निवृत्ति मार्ग। एक है ज्ञानमार्ग और एक है कर्ममार्ग। एक साङ्ख्यमार्ग, दूसरा कर्ममार्ग श्रीभगवान् अर्जुन को अनघ कहकर सम्बोधित करते हैं जिसका अर्थ होता है निष्पाप।

अर्जुन स्पष्ट और निष्पाप मन से पूछ रहे हैं। ज्ञानमार्ग का आचरण करने वालों के लिए, ज्ञानयोग का मार्ग बताया एवं कर्मयोग के मार्ग पर चलने वालों के लिए कर्मयोग का मार्ग बताया है। ज्ञान मार्ग, विचार प्रधान मार्ग है इसमें व्यक्ति विचार करता है। ध्यान, जप, वेद, पुस्तक पढ़ना, चिन्तन, मनन करना, आदि के माध्यम से चित्त को एकाग्र करने के सारे प्रयास करता है।

दूसरा कर्म प्रधान, क्रिया प्रधान मार्ग है। यहाँ पर चिन्तन, पठन, मनन इस बात का महत्त्व नहीं है। क्रिया अथवा कार्य क्या हो रहा है? इस बात का महत्त्व है। कुछ लोग कर्म करना पसन्द करते हैं और कुछ लोग ज्ञान प्राप्त करना पसन्द करते हैं। कुछ लोग ज्ञान में आनन्द प्राप्त करते हैं और कुछ लोग कर्म में आनन्द प्राप्त करते हैं। इसीलिए दोनों के लिए मार्ग हैं और मेरे द्वारा ही बताए गए हैं।

महाराष्ट्र के महान सन्त गोलवलकर महाराज के जीवन का एक प्रसङ्ग है। आश्रम के बाहर सड़क बनने का कार्य चल रहा था। आश्रम में प्रतिदिन साधक आते थे। उन्होंने नाम जप का महत्त्व बताया था। इसलिए साधक वहाँ आकर नाम जप करते थे। उन्होंने एक दिन मजदूरों की बात सुनी। वे बात कर रहे थे कि इन साधकों का जीवन बड़ा सरल है साधक आते हैं, बैठते हैं, नाम जप करते हैं, भोजन प्रसादी लेते हैं और चले जाते हैं। उन्हें कुछ करना ही नहीं है। उनका जीवन अच्छा है।

गोलवलकर जी ने उन्हें बुलाया। यह बहुत प्राचीन समय की बात है कि तुम्हें यहाँ कार्य करने की कितनी मजदूरी मिलती है। उस मजदूर ने बताया हमें एक दिन कार्य करने के चार आने मिलते हैं।

दिनभर कार्य करने के पच्चीस पैसे। महाराज ने उनसे कहा मैं तुम्हें पचास पैसे दूँगा। मेरे पास काम करोगे। मजदूरों ने पूछा क्या काम करना होगा। महाराज ने कहा काम कोई कठिन नहीं है बहुत सरल है। मजदूरों ने सोचा कितना भी काम हो कर लेंगे मजदूरी दुगनी तो मिलेगी। महाराज ने कहा कल से आ जाना। दूसरे दिन सुबह मजदूर पहुँचे। महाराज जी ने सबके हाथों में एक-एक माला दे दी और उनसे कहा एक स्थान पर बैठना है और श्री राम, जय राम, जय जय राम। ऐसा जाप करना है। मणि सरकाते जाना है, अङ्गुली से। एक माला हो जाए फिर दूसरी करना। ऐसे ही करते रहना। मजदूर ने कहा, बस यही काम है! महाराज जी ने कहा, हाँ बस इतना ही।

मजदूर माला फेरने लगे। जैसे तैसे एक माला हुई। दूसरी माला भी हो गई। ज्यादा समय भी नहीं हुआ पन्द्रह मिनट ही हुए। एक मजदूर ने पूछा यह कब तक करना है? महाराज जी ने कहा पूरे दिन आठ घण्टे, जितनी देर तुम काम करते हो। बीच में भोजन की छुट्टी होगी। उस समय भोजन कर लेना। मजदूर आधा घण्टा बड़ी मुश्किल से बैठे होंगे उठकर महाराज जी के पास गए और बोले, आपका काम अच्छा है। उनके हाथ में उनकी माला थमाई और कहा हम यह काम नहीं कर सकते। इतनी देर एक स्थान पर नहीं बैठ सकते। हमें मेहनत का काम चाहिए।

ज्ञानमार्ग पर चलने वाला मनुष्य शायद कर्ममार्ग का काम नहीं कर सकता। कर्ममार्ग पर चलने वाले मनुष्य के लिए ज्ञानमार्ग पर चलना कठिन होता है। इसीलिए श्रीभगवान् ने दोनों मार्ग बताए हैं। कर्म के मार्ग पर चलते समय जो सबसे श्रेष्ठ स्थिति है वह है नैष्कर्म्य कर्म स्थिति।

3.4

न कर्मणामनारम्भान्, नैष्कर्म्यं(म्) पुरुषोऽश्नुते।
न च सन्न्यसनादेव, सिद्धिं(म्) समधिगच्छति॥3.4॥

मनुष्य न तो कर्मों का आरम्भ किये बिना निष्कर्मता का अनुभव करता है और न (कर्मों के) त्याग मात्र से सिद्धि को ही प्राप्त होता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं जो यह परम सिद्धि है। परमानन्द की प्राप्ति परम शान्ति की प्राप्ति। इसी का नाम है नैष्कर्म्य सिद्धि। नैष्कर्म्य का अर्थ है- सब कार्य करते हुए भी मैं कुछ नहीं करता, यह भाव रखना। मैं करता हूँ, मैंने किया यह भाव नहीं रखना। उसके द्वारा कार्य होता जाता है। करने के पश्चात् भी यह मैंने किया उसे ऐसा नहीं लगता और वह कुछ न करते हुए भी, सारा कार्य करता जाता है। कुछ न करते हुए भी सारा कार्य हो जाना। क्या है नैष्कर्म्य सिद्धि।

जैसे किसी कम्पनी अथवा संस्था का प्रबन्धक अपने कार्यालय में अपने कमरे में जाकर बैठा और पत्र पढ़ने लगा तो कार्यालय के सभी कर्मचारी अपने-अपने काम में लग गए। उससे पहले सभी अपनी बातों में लगे हुए थे। प्रबन्धक को देखकर सब अपने काम में लग गए। अब इसमें प्रबन्धक ने कुछ नहीं किया। उनकी उपस्थिति मात्र से ही सब कार्य सुचारु रूप से होने लगे। उनके कुछ न करते हुए भी उनके सभी कार्य होने लग गए। उनको नैष्कर्म्य सिद्धि प्राप्त हो गयी।

सूर्य भगवान् दैनिक उदय होते हैं, अस्त होते हैं, हमें दिन भर प्रकाश देते हैं, सारी पृथ्वी का कार्य सूर्य भगवान् से ही चलता है। दिन भर उनके ही कारण हम कार्य कर सकते हैं। उनके अस्त होने पर हम सो सकते हैं। हम सूर्य भगवान् की प्रार्थना करते हैं कि आप हमेशा कार्य करते रहते हैं। कभी आपको विश्रान्ति नहीं है। कभी आप रुकते नहीं हैं। कभी आप थकते नहीं हैं।

सूर्य भगवान् कहेंगे कि मैं कोई कार्य नहीं करता हूँ, न ही मैं उदय होता हूँ, न मैं अस्त होता हूँ। मैं तो अपने स्थान पर स्थित हूँ। पृथ्वी गोल घूम रही है, अतः आपको ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्योदय हो गया, सूर्यास्त हो गया। मैं कुछ नहीं कर रहा। सूर्य भगवान् एक ही स्थान पर स्थित हैं और वे कुछ नहीं कर रहे हैं, तथापि उनका कार्य हो रहा है। सूर्य भगवान् न हों तो हमारे कार्य भी नहीं हो सकते यही नैष्कर्म्य स्थिति है।

बिना कुछ प्रयास किए सिद्धि प्राप्त नहीं होती, बिना मेहनत किए कोई प्रबन्धक नहीं बन सकता। उससे पहले पढ़ना लिखना पड़ता है कोई विशेष ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है, तब जाकर वह पद प्राप्त होता है। बहुत सारा काम करना पड़ता है, तब ऑफिस में उसे वह वरिष्ठ पद प्राप्त होता है।

कर्म किए बिना वह नैष्कर्म्य की सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। **आशनूते** अर्थात् आनन्द करना। मैंने सन्यास ले लिया अब मुझे कुछ नहीं करना ऐसा करने से कुछ प्राप्त नहीं होता।

संन्यासी है कुछ आवश्यक कार्य करने की आवश्यकता नहीं है लेकिन हमारे गुरुजी, स्वामीजी महाराज रात-दिन कार्य में संलग्न रहते हैं।

सर्वभूत हिते रता:
सबके हित के लिए निरन्तर कार्य करते रहते हैं। कोई भी मनुष्य एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता।

3.5

न हि कश्चित्क्षणमपि, जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः(ख्) कर्म, सर्वः(फ्) प्रकृतिजैर्गुणैः॥3.5॥

कोई भी (मनुष्य) किसी भी अवस्था में क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता; क्योंकि (प्रकृति के) परवश हुए सब प्राणियों से प्रकृति जन्य गुण कर्म करवा लेते हैं।

विवेचन- कोई भी **कश्चित्** एक भी जीव, एक क्षण, भी बिना कर्म किए नहीं रह सकते। भोजन करने के लिए कमाना पड़ेगा चलो कमाने की आवश्यकता नहीं हुई तो भोजन करने के लिए भोजन की क्रिया तो करनी ही पड़ेगी। जातु यानी किसी भी समय, कर्म किए बिना नहीं रह सकता। पानी पीना पड़ेगा, श्वास प्रश्वास तो करना ही पड़ेगा। यह क्यों होता है? क्योंकि प्रकृति के जो तीन गुण हैं सत, रज और तम। ये तीनों गुण जीव को सतत कार्य में लगाते हैं। इन गुणों के कारण जीव का, मनुष्य का कार्य होता रहता है। गुणों के बारे में हमने चौथे अध्याय में देखा है। हमारा शरीर इन्हीं गुणों के द्वारा निर्मित है।

पञ्चमहाभूत पृथ्वी, तेज, वायु, जल, आकाश, और मन बुद्धि चित्त अहंङ्कार इन सब से हमारा शरीर बना हुआ है। प्रकृति के द्वारा बने शरीर में हम रहते हैं, हम बन्धन में हैं। प्रकृति के बन्धन में है प्रकृति नहीं हमें इस शरीर में बान्ध रखा है। इसीलिए हमें कर्म तो करना ही पड़ेगा।

मान लो किसी के हाथ पैर बान्धकर उसे रथ में या गाड़ी में डाल दिया तो जहाँ रथ या गाड़ी जाएगी उसे वहाँ जाना ही पड़ेगा। इस प्रकार हमारे हाथ पैर बान्धकर हमें इस शरीर में डाल दिया गया है। शरीर के लिए जो करना है वह तो करना ही पड़ेगा। क्या हम कानों से सुनना बन्द कर सकते हैं? क्या आँखों से देखना बन्द कर सकते हैं? क्या नाक से सूंघना बन्द कर सकते हैं? क्या श्वास प्रश्वास लेना बन्द कर सकते हैं? इसलिए जब तक हम प्रकृति के सङ्ग हैं, यह सब करते ही रहना पड़ेगा।

मुक्त व्यक्ति कैसा होता है? जो कर्म के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

3.6

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य, य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा, मिथ्याचारः(स्) स उच्यते॥3.6॥

जो कर्मेन्द्रियों (सम्पूर्ण इन्द्रियों) को (हठपूर्वक) रोककर मन से इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करते हुए बैठता है, वह मूढ़ बुद्धि वाला मनुष्य मिथ्याचारी (मिथ्या आचरण करने वाला) कहा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं दो प्रकार के लोग होते हैं, कोई **मिथ्याचारी** भी होते हैं। वे अपनी इन्द्रियों पर तो रोक लगाते हैं, लेकिन मन से उसी विषय का विचार करते रहते हैं। इन्द्रियार्थ अर्थात् इन्द्रियों के विषय। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। उनके विषय भी हैं। कानों का विषय है शब्द, आँख का विषय है दृश्य, नाक का विषय गन्ध, त्वचा का विषय है स्पर्श, जीभ का विषय है रस और शब्द।

ये इन्द्रियों के विषय हैं, इनका योग और वियोग होता रहता है। आँखों से देखते हैं तो देखना आँखों का विषय हो गया। श्रीभगवान् कहते हैं कुछ लोग इन्द्रियों पर नियन्त्रण करते हैं। लेकिन मन के द्वारा इन विषयों का चिन्तन करते रहते हैं।

एकादशी का व्रत रखते हैं आज बिल्कुल खाना नहीं है। खाने, पीने के पदार्थों की याद करते रहते हैं तो उससे क्या लाभ है? एकादशी के दिन कोई सामने समोसा लाया तो कहेंगे नहीं,नहीं मैं इसे तो हाथ भी नहीं लगाऊँगा आज एकादशी है। कल एक नहीं दो खा लूँगा।

एक गुरु और शिष्य कहीं जा रहे थे। शिष्य अपने गुरु का मार्ग स्वच्छ करते हुए जा रहे थे। चलते-चलते एक नदी आ गयी। नदी में मात्र घुटने भर पानी था पर प्रवाह बहुत तेज था। शिष्य ने देखा कि वहाँ एक युवती खड़ी थी।

उस युवती ने कहा-
"मुझे नदी के पार जाना है। पानी का बहाव तेज है। मुझे डर लगता है कि मैं पानी में बह जाऊँगी। आप कृपा करके मेरा हाथ पकड़कर मुझे उस पार तक छोड़ दीजिये। मेरा छोटा सा बालक घर में भूखा बैठा है। सन्ध्या का समय है।"

शिष्य ने कहा-
"मैं संन्यासी हूँ। मैं आपको स्पर्श नहीं कर सकता। मैं आपको वहाँ नहीं छोड़ सकता।"

वह स्त्री विनती करने लगी कि मेरा बालक राह देखता होगा। अन्धेरा हो रहा है कृपा करके मुझे छोड़ दीजिये। शिष्य ने मना कर दिया कि वह ऐसा नहीं कर सकता।

तभी वहाँ उसके गुरुजी आ गए। उनके पूछने पर स्त्री ने कहा-

"मुझे नदी के उस पार जाना है। मुझे डर लग रहा है और ये मुझे हाथ पकड़कर ले जाने से मना कर रहे हैं।"

गुरुजी ने कहा-
"चलो मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ।"

उन्होंने ऐसा ही किया। फिर गुरुजी और शिष्य दोनों आश्रम में चले गए।दूसरे दिन सुबह उठकर शिष्य ने गुरुजी से पूछा-
आपने जब मुझे संन्यास दीक्षा दी तो यह बताया कि स्त्री का स्पर्श नहीं करना चाहिए।
आपने उस स्त्री का हाथ पकड़कर उस पार तक छोड़ दिया।"

तब गुरुजी ने कहा-
"मैंने तो उसे वहाँ छोड़ दिया, तुमने अभी तक पकड़कर रखा है।"

पकड़कर रखने का अर्थ है कि तुमने उसे स्पर्श नहीं किया, पर मन में अभी तक वहीं चिपके हो? मन में उसी का चिन्तन कर रहे हो? श्रीभगवान् कहते हैं कि ऐसा विमूढ़ व्यक्ति मिथ्याचारी है, ढोङ्गी हैं। विषयों को न स्पर्श करने का ढोङ्ग करता है और चिन्तन विषयों का ही करता है। यही तो मिथ्याचार है।

श्रीभगवान् कहते हैं, जो सच्चा योगी है वो जीवन मुक्त है।

3.7

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा, नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः(ख्) कर्मयोगम्, असक्तः(स्) स विशिष्यते॥3.7॥

परन्तु हे अर्जुन! जो (मनुष्य) मन से इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके आसक्ति रहित होकर (निष्काम भाव से) कर्मेंद्रियों (समस्त इन्द्रियों) के द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं जो अपने मन के द्वारा इन्द्रियों पर नियन्त्रण करता है। कर्मेंन्द्रिय के द्वारा काम करता जाता है। लेकिन मन के द्वारा इन्द्रियों को अपने नियन्त्रण में रखता है। विषयों में आसक्त नहीं होता। आत्मज्ञान में लगा हुआ है। उसका मन विषयों की ओर नहीं भागता। ऐसा जीव या व्यक्ति विशेष है, श्रेष्ठ है।

संसार में रहना है तो विषयों के साथ तो रहना ही है। सभी इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग तो होगा ही। जीभ से रस चखना ही है, बिना खाए हम नहीं रह सकते। कानों से हमें सुनना ही पड़ेगा, आँखों से हमें देखना ही पड़ेगा। पर उन विषयों को हमारे मन में आसक्त या चिपकने नहीं देना है।

स्वामी विवेकानन्द जी बहुत अच्छा उदाहरण देते हैं-
जहाज पानी में रहता है, पर उसमें डूबता नहीं है। जब तक जहाज में छेद नहीं होता, तब तक वह डूबता नहीं है। जब तक संसार हमारे अन्तरङ्ग में घुसता नहीं है, तब तक हम इस संसार को सरलता से पार कर सकते हैं। कर्म करते रहना परन्तु उसमें अटकना नहीं है। जिसको यह साध्य हो गया, वह इस भव सागर को पार कर लेता है। ऐसा जो करता है वह विशेष है, श्रेष्ठ है, वह कर्मयोगी है। इस अध्याय में हमें कर्मयोग ही सीखना है। कैसे कर्म करना कि हमारा कर्मयोग बन जाए?

करना तो वही करना है जो हम प्रतिदिन करते आ रहे हैं, नियत कर्म। कर्म करते समय उनके विषयों के साथ चिपकना नहीं है। कैसे करना है वह हमें इस अध्याय में सीखना है।

3.8

नियतं(ङ्) कुरु कर्म त्वं(ङ्), कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते, न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥3.8॥

तू शास्त्र विधि से नियत किये हुए कर्तव्य कर्म कर; क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर-निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

विवेचन- दो प्रकार के कर्म हैं नियत कर्म और विहित कर्म। विहित कर्म में ही नियत कर्म समाविष्ट है। विहित कर्म हमारे वर्ण आश्रम के अनुसार जो हमें करना ही है। उसी में हमारा विशेष हित है।

जैसे जो ब्रह्मचारी हैं, छात्र हैं उसका विहित कर्म क्या है? अध्ययन करना, व्यायाम करना, माता-पिता की सेवा करना।

गृहस्थ का विहित कर्म है, परिवार के सदस्यों का भरण पोषण करने के लिए धनार्जन करना, घर अच्छा रखना बच्चों को पढ़ाना। घर में जो वृद्ध हैं उनकी सेवा करना। संन्यासियों की मदद करना सन्तों की सेवा करना। धन अर्जित करना उसका विहित कर्म है। धन कमाने के लिए कोई निश्चित कर्म करता है कि मैं व्यापार करूँगा। कोई निश्चित करता है मैं नौकरी करूँगा, कोई सोचता है मैं खेती करूँगा, कोई सोचता है मैं कारखाना स्थापित करूँगा। विहित कर्म हो गया धनार्जन करना, धन कमाने के लिए कृषि करना तो यह हो गया नियत कर्म।

छात्र है तो पढ़ाई करना हो गया उसका विहित कर्म। लेकिन वाणिज्य पढ़ने का निश्चय किया है तो सम्बन्धित पुस्तक पढ़ना यह हो गया उसका नियत कर्म। श्रीभगवान् कहते हैं जो तुम्हारा नियत कर्म है वह तुम करो। अर्जुन! तुम एक क्षत्रिय हो, योद्धा हो तुम्हारा कर्म है युद्ध करना तो तुम युद्ध करो। अकर्मण्य रहने से कर्म करना अच्छा है। नियत कर्म छोटा है, बड़ा है उससे कोई अन्तर नहीं होता। अकर्मण्य रहने से शरीर भी नहीं चल सकता। शरीर चलाने के लिए शरीर का निर्वाह करने के लिए कर्म करना तो आवश्यक है। तुम अपना नियत कर्म करो। दूसरे का कर्म क्या है, यह मत सोचो। कर्म करते समय भी एक महत्त्वपूर्ण बात है, नैष्कर्म्य सिद्धि चाहिए। परम सिद्धि नहीं चाहिए वह कैसे प्राप्त हो सकती है वह आगे बताते हैं।

3.9

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र, लोकोऽयं(ङ्) कर्मबन्धनः।
तदर्थं(ङ्) कर्म कौन्तेय, मुक्तसङ्गः(स्) समाचर॥3.9॥

यज्ञ (कर्तव्य पालन) के लिये किये जाने वाले कर्मों से अन्यत्र (अपने लिये किये जाने वाले) कर्मों में लगा हुआ यह मनुष्य समुदाय कर्मों से बँधता है, (इसलिये) हे कुन्तीनन्दन ! तू आसक्ति-रहित होकर उस यज्ञ के लिये (ही) कर्तव्य कर्म कर।

विवेचन- **यज्ञ** श्रीमद्भागवद्गीता का विशेष शब्द है। जो श्रीभगवान् को अत्यन्त प्रिय है। यज्ञ के भाव से कर्म करना। यज्ञ शब्द से हमारे सामने हवन कुण्ड अग्नि प्रज्वलित वाला दृश्य आता है। उसमें आहुति देते हैं, उसे हम यज्ञ कहते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार हमारा नियत कर्म करते हुए उस कर्म को श्रीभगवान् के प्रति अर्पण करना। अर्पण करने के भाव से करना, यह यज्ञ की बहुत ही सुन्दर कल्पना है। नियत कर्म को कर्त्तव्य कर्म की भावना से करते हुए यह बात भूल जाना कि वह कर्म मैंने किया।

स्वधर्मु जो बापा, तोचि नित्ययज्ञु जाण पां।
म्हणोनि वर्ततां तेथ पापा, संचारु नाहीं ॥81॥

हमारा कर्त्तव्य कर्म ही हमारा यज्ञ है। मन में यज्ञ के भाव से अर्पण करने के, भाव से कर्म करना। श्रीभगवान् ने यह काम मुझे सौंपा है। यह नियत कर्म उस भाव से करना। बचपन से अब तक हमने जो जो प्राप्त किया जैसे बचपन में जिस विद्यालय में हम पढ़े, वह विद्यालय हमने बनाया क्या? जो भोजन हम करते हैं वह क्या साग सब्जी और हमने उगाया क्या जो वस्त्र हम धारण करते हैं वह हमने बनाए क्या? उसके लिए कपास हमने उगाई क्या? हमने उसे बुना क्या? यह हर एक व्यक्ति अपना-0अपना

यज्ञ कर रहा है। यह तो हमें प्रसाद स्वरूप प्राप्त होता है। हम रास्ते से मार्ग पर से जाते हैं। ग्रन्थालय में पुस्तक पढ़ते हैं, हम आम खाते हैं क्या वह पेड़ हमने लगाए थे क्या? यह सब हमें किसी न किसी के यज्ञ से प्राप्त होता है, और इसीलिए जहाँ से जो प्राप्त होता है उसे वहीं वापस लौटाना।

यह यज्ञ है। यज्ञ में हम आहुति देते हैं। आहुति कहाँ से देते हैं उसी से प्राप्त उसी को देते हैं।

"**तेरा तुझको अर्पण क्या लगे मेरा।**"

यही भाव से हमें हमारे कर्म करने हैं। यह मेरा जीवन समाज के लिए है। परिवार के लिए है। मेरे राष्ट्र के लिए है।

महाराज गोलवलकर जी का छायाचित्र आपने देखा होगा उसमें हवन के सामने बैठे हैं और उसके नीचे लिखा है।

राष्ट्राय स्वाहा, इदं राष्ट्राय इदं न मम

मेरा जीवन राष्ट्र को समर्पित। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है।

सङ्ग का अर्थ है आसक्ति इसमें मेरी कोई आसक्ति नहीं है। इसमें मेरी आसक्ति नहीं है इससे मुझे कुछ लेना नहीं है तो कैसे भी कर दूँ, इस भावना से नहीं करना है। अपना नियत कर्म अच्छे से करो।

3.10

सहयज्ञाः(फ्) प्रजाः(स्) सृष्ट्वा, पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वम्, एष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥3.10॥

प्रजापति ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदिकाल में कर्तव्य कर्मों के विधान सहित प्रजा (मनुष्य आदि) की रचना करके (उनसे प्रधानतया मनुष्यों से) कहा कि (तुम लोग) इस कर्तव्य के द्वारा सबकी वृद्धि करो (और) यह (कर्तव्य कर्मरूप यज्ञ) तुम लोगों को कर्तव्य-पालन की आवश्यक सामग्री प्रदान करने वाला हो।

विवेचन- श्रीभगवान् अर्जुन को निमित्त बनाते हुए, हमें बताते हैं कि प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा जी ने सृष्टि का निर्माण किया, सारी प्रजा का सृजन किया। हर जीव के साथ उसके लिए एक यज्ञ निश्चित किया। जीव के जन्म लेते ही उसके साथ उसका यज्ञ या उसका नियत कर्म निश्चित हो जाता है। हर जीव के साथ उसके कर्त्तव्यों का भी निर्माण किया। उवाच अर्थात् कहा। प्रजापति ने कहा, यज्ञ तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण करने वाला हो ऐसा आशीर्वाद भी दिया। श्रीभगवान् ने हमें यह जीवन दिया और इस जीवन के द्वारा यज्ञ करते हुए अपने जीवन को उन्नत करते चलो। अपना कल्याण कर लो। अपना हित कर लो और तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण हों, ऐसा आशीर्वाद भी श्रीभगवान् ने दे दिया।

3.11

देवान्भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं(म्) भावयन्तः(श्), श्रेयः(फ्) परमवाप्स्यथ॥3.11॥

तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवताओं को उन्नत करो और वे देवता तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से एक-दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम् कल्याण को प्राप्त हो जाओगे।

विवेचन- देवता हमारे साथ रहते हैं। हमारी सृष्टि में हमारे आस-पास में एक सूक्ष्म सृष्टि होती है, यह देवता होते हैं। जिस प्रकार हमारे घर में बुजुर्ग, श्रेष्ठ रहते हैं। हमारे परिवार में भी हमारे वृद्ध हमारे बच्चे रहते हैं। ग्रहस्थों को वृद्धों की सहायता करनी चाहिए, वृद्धों को बच्चों की देखभाल करनी चाहिए। बच्चों को अपने माता-पिता की सेवा करनी चाहिए। हमसे जो श्रेष्ठ है, वृद्ध हैं उनकी सेवा करेंगे तो वह प्रसन्न हो जाएँगे। उन्हें अच्छा लगेगा उनका भी हित होगा।

अनेन अर्थात् इस यज्ञ के द्वारा, जिन्हें यह प्राप्त होता है वह उन्नत हो जाते हैं उन्हें अच्छा लगता है। यह जीवन ही सबका परस्पर मिलकर रहने का है। हमारा सामाजिक जीवन है। सब लोग मिलकर नियमों का पालन करेंगे तो कार्य सुचारू रूप से चलेंगे। सब लोग अपना कर्त्तव्य कर्म अच्छे से करेंगे। सारा देश अच्छे से चलेगा। घर में ऐसा होता है कि सब लोग कोई भी वस्तु कहीं भी रख देते हैं और माँ उन्हें व्यवस्थित रखती रहती है तो क्या माँ को अच्छा लगेगा। प्रत्येक व्यक्ति अपना सामान अपने स्थान पर व्यवस्थित रखता है तो माँ को अच्छा लगता है। परस्पर एक दूसरे का सहयोग करते हुए कार्य करते हैं तो श्रेय, एक दूसरे का कल्याण होता है। कर्म किए बिना नहीं रह सकते। जो भी अपना कर्म है उसे ठीक प्रकार से करें तो सभी का कल्याण हो जाएगा। कर्मयोग का पहला सोपान हमने आज देखा। बिना कर्म किए कोई भी एक क्षण भी नहीं रह सकता। हमें अपने कर्म कर्त्तव्य के भाव से, यज्ञ के भाव से करने हैं। यह कार्य मुझे परमात्मा ने सौंपा है इस भाव से करना है। उसे करके भूल जाना। जिस प्रकार अग्नि में आहुति देते हैं फिर हम यह नहीं देखते वह कहाँ गई वह विलीन हो जाती है। हमारे कर्म भी अनन्त में विलीन कर देना। यज्ञार्थ कर्म करने से मनुष्य मुक्त हो जाता है। यज्ञार्थ कर्म कैसे करते जाना। किन-किन बातों का ध्यान रखना आगे श्रीभगवान् बताएँगे।

इसी के साथ सत्र का समापन हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्न कर्ता- गोविन्द भैया
प्रश्न- मैं एल आई सी एजेंट हूँ, बीमा का काम करता हूँ तो क्या लोगों से मिलना मेरा नियत कर्म है?
उत्तर- उन्हें अपना उत्पाद या अपनी पॉलिसी के बारे में बताना' समझना यह सब नियत कर्म ही है। उनका इसमें कल्याण है उनका कल्याण होगा तो आपका भी कल्याण हो जाएगा।

प्रश्न कर्ता- निशा दीदी
प्रश्न- कर्मयोग और साङ्ख्ययोग का अर्थ पुनः समझा दीजिए।
उत्तर- साङ्खयोग को ज्ञानमार्ग से श्रीभगवान् को जानने का मार्ग भी कह सकते हैं। श्रीभगवान् को जानने के लिए जितने भी ग्रन्थ पढ़ने हैं वो सभी साङ्ख्ययोग के अन्तर्गत आते हैं।
दूसरा है कर्मयोग का मार्ग है जिसमें अपने कर्त्तव्य कर्म करना है।
साङ्ख्य शब्द से भ्रमित होने की आवश्यकता नहीं है साङ्ख्य का अर्थ है, ज्ञानयोग। परमात्मा को जानना।
अपने कर्त्तव्य कर्म करना यह कर्मयोग का मार्ग है।
कुछ लोग ज्ञान प्राप्त करने के लिए सक्षम होते हैं सभी नहीं कर पाते जैसा हमने उदाहरण में देखा और किसी को कार्यशील होना या कार्य करना अच्छा लगता है। दोनों मार्ग परमात्मा तक ही पहुँचाते हैं देखा जाए तो दोनों एक ही हैं। एक ही स्थान पर ले जाते हैं। अपनी योग्यता क्या है वह हमें देखना है। हम जैसे सामान्य लोगों के लिए कर्त्तव्य कर्म करना सरल है।

प्रश्नकर्ता- सुनील भैया
प्रश्न- महाभारत का युद्ध नहीं करना चाहिए यह विचार अर्जुन के मन में ही क्यों आया? यह प्रश्न अन्य किसी योद्धा का मन में क्यों नहीं आया?
उत्तर- यद्यपि अर्जुन योद्धा हैं तथापि उसका हृदय कोमल है, अर्जुन निष्पाप हैं। यही कारण है कि वह युद्ध नहीं करना चाहते थे।
तीन पाण्डव युद्ध के पक्ष में नहीं थे। युधिष्ठिर युद्ध के पक्ष में नहीं थे। नकुल और अर्जुन भी युद्ध नहीं करना चाहते थे। भीम ने कहा था कि जैसा युधिष्ठिर भैया कहेंगे वैसा मैं करूँगा। मात्र सहदेव ही युद्ध के पक्ष में थे।

प्रश्नकर्ता- सञ्जय भैया
प्रश्न- क्या कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनों मार्ग पर एक साथ चल सकते हैं?
उत्तर- जी हाँ, यह दोनों ही नहीं श्रीमद्भगवद्गीता में बताए हुए अट्ठारह अध्याय अट्ठारह योग ही हैं। सभी योगों को अपने जीवन में एक साथ उतारा जा सकता है।

प्रश्नकर्ता- कमला दीदी
प्रश्न- निहित और विहित कर्म में क्या हैं?
उत्तर- विहित कर्म और नियत कर्म।
विहित कर्म- अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार जो कर्म हमें करने चाहिए वे विहित कर्म कहलाते हैं।
नियत कर्म- गृहस्थ आश्रम में रहते हुए अर्थार्जन करना यह विहित कर्म है। किन्तु अर्थार्जन करने के लिए जो कर्त्तव्य कर्म हमने चुना है वह नियत कर्म है। यह नियत कर्म अध्यापन आदि कुछ भी हो सकता है जिसे हम नियत कर्म की श्रेणी में रखते हैं।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||